२७१ कलश।

मुक्त्वा मोहं कनकरमणीगोचरं हेयरूपं,
नित्यानन्दं निरुपमगुणालङ्कृतं दिव्यबोधम्।
चेतः शीघ्रं प्रविश परमात्मान-मव्यग्ररूपं,
लब्ध्वा धर्मं परम-गुरुतः शर्मणे निर्मलाय।।२७१।।

श्लोकार्थ : हेयरूप ऐसा जो कनक और कामिनी... कंचन और कामिनी जिसे प्रियरूप लगे हैं, उन्हें हेयरूप करना। फँस गया। यहाँ तो कहते हैं कि **हेयरूप ऐसा जो कनक और कामिनी सम्बन्धी मोह...** आहाहा! पर सम्बन्धी मोह। अपना चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति भगवन्त को छोड़कर कंचन और कामिनी के मोह में पड़ा है। उसे छोड़कर।

भाषा तो सरल है, उसे छोड़कर परन्तु अन्दर में उसे छोड़कर। आत्मा का प्रेम और आनन्द का अनुभव हो, तब कंचन और कामिनी का मोह छूटेगा। एक चीज़ की महिमा आवे तो दूसरी चीज़ की महिमा छूट जाती है। एक आत्मा की महिमा (आवे कि) ओहो! मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूप एक आत्मा भगवान परमेश्वर हूँ। पर्याय में पर के ऊपर लक्ष्य जाने से अपने स्वरूप को भूल जाता है तो अपने स्वरूप को जानने के लिये पर का प्रेम छोड़ना। ओहोहो!

दो शब्द लिये। उसमें पूरी दुनिया आ गयी। आहाहा! कंचन और कामिनी अर्थात् कि बाहर की लक्ष्मी आदि और स्त्री आदि, इनके मोह को छोड़कर। भाषा तो ऐसी ही आती है। बाकी तो छोड़ना, वह भी व्यवहार है। अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप है, उसके रस और प्रेम में मोह छूट जाता है। मोह छोड़ना नहीं पड़ता परन्तु उपदेश में तो ऐसी पद्धति आती है कि उसे छोड़। यहाँ लगन लगा और उसे छोड़। आहाहा! अरे! तुझे जन्म-मरण, भवभ्रमण, परिभ्रमण छोड़ना हो तो, भव-भव की गति में भटकता है, उस भवभ्रमण को छोड़ना हो तो इस ओर परिभ्रमण का कारण लक्ष्मी और स्त्री दो, उनमें सब आ गया... आहाहा! उनका मोह, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! जिसमें बिल्कुल लाभ

का कारण नहीं, नुकसान का कारण है, उसमें प्रेमबुद्धि, वह नुकसानकारक मिथ्यात्व है। आहाहा! साधारण बात नहीं है।

भाषा तो कंचन और कामिनी कही है परन्तु आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परचीज़ में विशेष, अधिक, आश्चर्यकारी और सुखबुद्धि रखनेवाली कोई चीज़ हो तो उस चीज़ से अपनी चीज़ का पता नहीं लगता। आहाहा! ऐसा है। इसका अर्थ पूरे संसार का प्रेम छोड़। कंचन और कामिनी, एक ओर अकंचन और यह निर्दोष आनन्द भगवान का अनुभव करने से, अनुभव करने से परवस्तु जो है, कंचन और कामिनी तो दो नाम दिये हैं, परन्तु सब परवस्तु के प्रति मोह छोड़ दे। आहाहा!

हे चित्त! पर का मोह छोड़कर, हे चित्त! आहाहा! **निर्मल सुख के हेतु...** निर्मल आनन्द का कारण। निर्मल आनन्द का कारण **परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके...** परम गुरु यही समझायेंगे। बाकी सत्य बात परम गुरु बिना कहीं है नहीं। आहाहा! कुछ का कुछ दूसरा मिथ्यात्व के शल्य की विपरीतता डालेगा। वीतराग त्रिलोकनाथ के साधु अथवा उनकी वाणी, परम गुरु एक ही बात बताते हैं। परमानन्द का नाथ चैतन्य चमत्कार अनन्त आनन्द का सागर अन्दर है। प्रभु! अनन्त आनन्दस्वरूप तू है, वहाँ प्रीति लगा न! जिसमें दुःख है, स्वभाव का अनादर है, उसमें दुःख है, उस प्रीति को छोड़। आहाहा! यह तो बाबा होवे तब छोड़े, ऐसा कोई कहता है। वह कहता था न? अमृतलाल। अमृतलाल। बाबा ही है। परन्तु कब? बापू, भाई! तू एक चीज़, स्वयं पर के सम्बन्धरहित एक चीज़ ही तेरे अन्दर है। दो बात है ही नहीं। कर्म और राग, वह तेरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं, **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु...** यह निर्मल क्यों लिया? क्योंकि इन्द्रिय का सुख जहर है, दुःख है। आहाहा! अपने अतिरिक्त पर में किसी के भी प्रति शरीर, इन्द्रिय, पैसा और इज्जत उसमें कुछ भी प्रेम करने से मिथ्यात्व और दुःख होता है, तो **निर्मल सुख के हेतु...** वह निर्मल सुख तो आत्मा में है। **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** सच्चे परम सत् सन्त द्वारा... आहाहा! और वही सत्य कहेंगे, ऐसा कहते हैं। परम गुरु, वे एक ही सत्य कहेंगे। बाकी गड़बड़.. गड़बड़ कर डालेंगे। आहाहा!

परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, परसन्मुख का मोह छोड़कर अर्थात् परसन्मुख की सावधानी छोड़कर अपनी चीज़ में

सावधानी कर। आहाहा! भाषा तो सरल है परन्तु... आहाहा! यह काम करना... आहाहा! अपनी चीज़ की सावधानी होने के कारण, अपने अतिरिक्त परचीज़ की सावधानी का मोह छोड़कर **हे चित्त!** हे आत्मा! **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** आहाहा! **प्राप्त करके...** परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु उसे कहते हैं कि जो आत्मा की प्राप्ति करावे। कुछ भी विकल्प में, राग में बीच में अटकाने की बात (न करे)। लोगों को एकान्त लगता है। दो सिद्धान्त लक्ष्य में बराबर ले कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता और प्रत्येक द्रव्य की क्रमसर पर्याय क्रमबद्ध होती है। आहाहा! ये दो सिद्धान्त लक्ष्य में ले तो परसन्मुख की सावधानी छूट जाती है। आहाहा! मैं उसका कर दूँ और मैं उसका कर दूँ... परन्तु तू तो पर को स्पर्श नहीं करता, पर को छूता नहीं तो पर का तू क्या कर सकेगा? आहाहा! शरीर को भी स्पर्श नहीं करता, वह तो जड़ है। उसकी जिस समय में, जिस क्षण में जो अवस्था होनेवाली है, वह होगी ही। तेरी सावधानी से उसमें कुछ फेरफार होगा, ध्यान रखने से शरीर की पर्याय ठीक रहेगी, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! यह सब दवा-बवा करे न? यह सब बातें।

जड़ और चेतन की पर्याय जिस समय में होनेवाली है, वह होकर ही रहेगी। दूसरा उसे करे, ऐसा तीन काल में नहीं बनता क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायरूपी काम के बिना नहीं रहता। प्रत्येक चीज़ निकम्मी नहीं रहती। निकम्मी का अर्थ? अपनी पर्याय का कार्य किये बिना कभी कोई चीज़ नहीं रहती। कोई चीज़ अपनी पर्याय का कार्य किये बिना नहीं रहती तो तू पर का क्या करेगा? आहाहा! शरीर का, वाणी का, मन का... आहाहा! तू किसी का कुछ कर सकता नहीं। कठिन बात है, भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं है। वीतराग का धर्म... आहाहा!

एक चीज़ दूसरी चीज़ को तीन काल में कभी स्पर्श नहीं करती। यह सिद्धान्त जब तक न जँचे, तब तक मैं पर का करता हूँ, पर का करता हूँ, पर से लेता हूँ, पर से सुख मानता हूँ (ऐसा मानता है)। एक चीज़ दूसरी चीज़ को कभी तीन काल में स्पर्श नहीं करती। एक चीज़ दूसरी चीज़ को चुम्बन नहीं करती, स्पर्श नहीं करती, प्रवेश नहीं करती। परद्रव्य में प्रवेश करके उसकी पर्याय बनावे, ऐसा तीन काल में नहीं होता है। आहाहा! पूरे दिन काम होवे उससे। कहते हैं, तुझसे नहीं होता, तुझसे। आहाहा! बोलने का काम, चलने का काम,

वह काम उस समय में होनेवाली पर्याय होकर ही रहेगी। तुझसे वह होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा...** आहाहा! जैन के गुरु उसे कहते हैं कि जो आत्मा का आनन्द (प्रगट) करने को कहते हैं, वे जैन के गुरु। बाकी कोई भी राग की क्रिया से तुझे लाभ होगा, व्यवहाररत्नत्रय करते-करते लाभ होगा, (ऐसा कहे), वे जैन के गुरु नहीं हैं। आहाहा! इसलिए इतना शब्द प्रयोग किया है। **परम गुरु द्वारा...** परम गुरु द्वारा, यह निमित्त। धर्म सुनने में-देशनालब्धि (में) वे निमित्त हैं। प्राप्त करता है स्वयं से, परन्तु वहाँ निमित्त है। उन्होंने ऐसा कहा कि आत्मा राग से रहित निर्मलानन्द है तो वह शब्द से प्राप्त कर ले, ऐसा नहीं है। अन्तर में राग से भिन्न होकर आनन्दस्वरूप भगवान का स्पर्श करके अनुभव करे, उसमें तो भगवान की देशना और भगवान भी काम नहीं करते, परन्तु निमित्त बताते हैं। निमित्त गुरु हैं और वे उपदेश भी ऐसा देते हैं। आहाहा!

परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... कैसा धर्म? निर्मल सुख का हेतु। यह कहा न? निर्मल सुख का हेतु, आत्मा के सुख का कारण, वह धर्म, गुरु बताते हैं। आत्मा के सुख का कारण निर्मल सुख, आत्मा के आनन्द का कारण ऐसा जो धर्म, उसे गुरु बताते हैं। उनके द्वारा सुनकर... ओहोहो! **तू अव्यग्ररूप...** शान्त हो जा। व्यग्रता छोड़ दे। अस्थिरता, मोह की व्यग्रता छोड़ दे, अव्यग्र हो जा। क्योंकि परम गुरु ने यह कहा है कि निर्मल सुख की प्राप्ति अपने स्वरूप के अवलम्बन से होती है। गुरु का यह उपदेश था। इसके अतिरिक्त दूसरी किसी चीज़ से आत्मा के अन्तर आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा!

यह सब करना कब? मन्दिर बनाना, पूजा करना, शान्ति पाठ, पंच कल्याणक होता है न? यह चर्चा चली है। यह चर्चा एक पुस्तक में चली है। प्रतिष्ठा में पंच कल्याणक करना, यह कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। भगवान की प्रतिष्ठा करना, उसमें पंच कल्याणक, उसमें माँ-बाप, उनके माता-पिता हो और फिर बने। बड़ी चर्चा चली है। लेख आते हैं। लोगों ने उपाधि बढ़ा ली है। आहाहा! मानो पर का कुछ करें तो पर को जरा ठीक हो। पर को ठीक हो। पर में नहीं परन्तु पर से। पर का कुछ करें... आहाहा! भगवान के यज्ञ-होम करें। यह पंच कल्याणक पूरा होकर... नहीं? पंच कल्याणक पूरा होकर होम

करते हैं न ? शान्ति का पाठ, होम। क्या होगा सब ? ऐसा कहाँ से निकला ? ऐसी चर्चा चली है। बात सत्य है। बाद में सब एकत्रित होकर फिर तिल को डालकर होम या होम... या होम... या होम (बोलते हैं) और धुँआ निकलता है, यह शान्तिपाठ। परन्तु उसमें शान्ति कहाँ आयी ? आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो शान्ति का पाठ है न, ऐसा कि शान्तिरूपी कार्य नहीं, शान्तिरूपी पाठ है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठ है न! पाठ में भाषा है। उसमें शान्ति कहाँ आयी ? पाठ में क्या है ? पाठ बोले, उसमें क्या है ? आहाहा! वह तो यह मोरबी में अभी होता है न ? भाई गया है न ? हरिलाल। वह सब तूफान हुआ था न ? तो वह शान्ति करते हैं। उसके कारण शान्ति होगी ? यह तो क्या भ्रमणा है जगत की!

मुमुक्षु : काम में रहे, तब तक धन्धे में न जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाए परन्तु वह तो शुभराग है। वह राग तो संसार है। उसमें निर्मल सुख की प्राप्ति कहाँ हुई ?

यहाँ तो यह शब्द है न ? **निर्मल सुख के हेतु...** आत्मा के आनन्द का हेतु। वह गुरु का उपदेश है। आहाहा! यह बड़ी चर्चा चली थी कि यह क्या ? पंच कल्याणक और यह उपाधि और... प्रतिष्ठा करे, उसमें दूसरा लम्बा बहुत चलता है, परन्तु परम्परा चली हो उसमें। क्योंकि व्यवहार के कथन ऐसे होते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, गुरु ने जो उससे कहा... **निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके तू अव्यग्ररूप...** हो जा। शान्ति, अन्तर में शान्ति है। भगवान आनन्द में अन्तर शान्ति है। बाहर की कोई क्रिया करने से शान्ति मिलेगी, शान्ति का हवन करे और शान्ति का यह करे... आहाहा! गजब भाई! शान्ति करे, होम और यज्ञ करे, कितने तिल डाले, बड़ा धुँआ निकले।

मुमुक्षु : अपने बन्द कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपने को तो कुछ खबर भी नहीं। हमने तो कुछ कहा भी नहीं कि करो और नहीं कहा वह करो। बाबूभाई यह तीर्थ फण्ड का करते हैं, वह भी हमने

कुछ कहा नहीं। यहाँ तो उपदेश के अलावा कोई बात ही नहीं। जो करते हों, वे स्वयं स्वयं को... आहाहा!

यहाँ तो एक ही बात है। अन्त में आवश्यक में डाल दी। आवश्यक है न? आवश्यक तो यह एक ही है कि परम गुरु तेरे स्वरूप की निर्मल आनन्द की प्राप्ति करने का उपदेश देते हैं। आहाहा! उसका योगफल यह आना चाहिए। लाख बात की बात हो। तू निर्मल आनन्द है, प्रभु! अरे! कैसे जँचे? एक उड़द की दाल ठीक न हो, वहाँ घनघनाहट (हो जाती है) किसने ऐसी बिगाड़ी? आहाहा! अरे रे! प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? यह सब होता है वह... आहाहा!

अव्यग्रपना और उसका कारण तेरा आत्मा है। निर्मल सुख का कारण तो तेरा आत्मा अन्दर है। बाकी सब दुःख के कारण हैं। आहाहा! यह होम और फोम और दूसरे शुभभाव की जो क्रिया (करे), वह सब दुःख का कारण है। बाबूभाई! ऐसा जँचना कठिन पड़ता है। परम्परा चलती हो। परन्तु इसे खबर नहीं, भाई! बाहर की लाख, करोड़, अरब क्रिया हो। यहाँ तो यह कहा न, कंचन को छोड़कर। उस कंचन में सब आ गया। अपने अतिरिक्त पर कोई भी पदार्थ का प्रेम छोड़ दे कि उससे मुझे लाभ होगा तथा स्त्री का प्रेम छोड़ दे कि उसमें से कुछ भी सुख मिलेगा। आहाहा!

निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... आहाहा! शब्द तो बहुत थोड़े हैं परन्तु गुलांट खिलायी पूरे संसार से। निर्मल सुख का कारण बताकर, धर्म निर्मल सुख का कारण है। धर्म निर्मल सुख अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है तो अतीन्द्रिय आनन्द तो भगवान आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है, तो उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द मिलेगा। आहाहा! बहुत सरस अन्त में... कंचन और कामिनी को हेय जानकर छोड़ दे और इस निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त कर ले। एक को छोड़ और एक को प्राप्त कर ले। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ सर्वांग शान्ति और सर्वांग सुख का सागर पड़ा है, प्रभु! उसमें जाकर निर्मल सुख की प्राप्ति कर। बाकी इसके अतिरिक्त कोई भी चीज़ देव-गुरु-धर्म से भी तुझे सुख नहीं मिलेगा। आहाहा! शोर मचावे न लोग! देव, गुरु, भगवान से भी तुझे धर्म नहीं होगा। भगवान की प्रतिमा और मन्दिर से भी तुझे धर्म नहीं

होगा। वह सब तो शुभभाव का निमित्त है। पुण्य—शुभभाव, अशुभ से बचने के लिये वह भाव है, परन्तु उससे धर्म-बर्म नहीं है। उससे जन्म-मरणरहित (नहीं हुआ जाता)। आहाहा! इतनी सब धर्म की शर्तें! धर्म की इतनी शर्तें! देवीलालजी! कितनी शर्त?

तेरे अतिरिक्त सबकी वृत्ति छोड़ दे, क्योंकि निर्मल सुख का कारण तो तू आत्मा है। आहाहा! यह शर्त है। इसके अतिरिक्त सब दुःख का कारण है। तीर्थंकर साक्षात् भगवान हो तो भी दुःख का कारण है क्योंकि उन पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा। परद्रव्य पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा। राग है, वह तो दुःख है। वीतराग त्रिलोकनाथ यह कहते हैं। आहाहा! बात सुनी नहीं, कभी सुनी नहीं। आहाहा! धन्धा-पानी करते-करते... अरे रे! पानी फेर डाला। इस शब्द में कितना गहनपना है।

परसन्मुख का मोह छोड़कर, गुरु का उपदेश अन्तर आनन्द की प्राप्ति का उपदेश है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपदेश नहीं है। आहाहा! सब कथन और सब वांचन, सबका फल यही आना चाहिए। स्व सन्मुख लक्ष्य करके आनन्द आना, वह वस्तु है। आहाहा! बहुत शास्त्र पढ़े तो अन्दर आनन्द आयेगा, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

तू अव्यग्ररूप (शान्तस्वरूपी) परमात्मा में—शान्तस्वरूपी परमात्मा, भगवान अन्दर शान्तस्वरूपी परमात्मा विराजता है। आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी यह करना? मुनि तो ठीक त्याग करे। मुनि को चारित्र है। स्वरूप उपरान्त स्वरूप लीनता है और बाकी धर्म की शुरुआत इस आत्मद्रव्य का आश्रय है। आहाहा! बाकी सब बात है। आहाहा! अपना स्वरूप निर्मल आनन्द की प्राप्ति होना, वह एक ही बात भगवान तीन लोक के नाथ, अनन्त तीर्थंकरों का कहना है। आहाहा! यह बात परमात्मा के अतिरिक्त, अनन्त तीर्थंकरों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। कहीं न कहीं गड़बड़-गड़बड़ करे, ऐसा कर दें, ऐसा कर दें, हमको तू कुछ प्रसन्न कर तो तुझे लाभ होगा। सब मिथ्या बात है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को भी केवलज्ञान न हुआ हो और दीक्षा ली। भिक्षा के लिये जाएँ तो आहार दे तो पुण्य होता है। संसार का नाश तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। तीर्थंकर जैसों को आहार देने से (भी संसार का नाश नहीं होता)। यह वाणी वीतराग की है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसका ठिकाना कहाँ है? श्वेताम्बर शास्त्र में विपाक भरा

है। पूरा विपाक। बहुत बात करते हैं, भाई! सब बात की थी। वह कौन गाँधी, नहीं? गोकलदास गाँधी के साथ बात की थी, देखो! यह बत्तीस सूत्र में विपाकसूत्र पूरा सब एकदम झूठा है। वहाँ मिथ्यादृष्टि लेनेवाला साधु, उसे आहार-पानी दे तो परित संसार हो, ऐसा पाठ है। विपाकसूत्र में पाठ है।

मुमुक्षु : दृष्टान्त भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, पाठ है न, सब मिथ्या बात है। आत्मा के अवलम्बन और आश्रय के अतिरिक्त धर्म तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। पंच परमेष्ठी के आश्रय से भी धर्म नहीं होता। आहाहा! भगवान की वाणी को लाख पूजे, उससे धर्म नहीं होता। आहाहा!

यहाँ संक्षिप्त में कहते हैं। अवश्य करनेयोग्य हो तो गुरु यह कहते हैं। आहाहा! **परमात्मा में—कि जो (परमात्मा) नित्य आनन्दवाला है,...** क्या कहते हैं? निर्मल आनन्द का उपदेश गुरु ने दिया। क्यों?—कि आत्मा **नित्य आनन्दवाला है,...** इसलिए निर्मल आनन्द का उपदेश दिया। आहाहा! अतीन्द्रिय नित्य आनन्द का नाथ आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त पर में सब में जहर का प्याला है। आहाहा! पैसे की ममता, स्त्री की ममता, पुत्र की ममता, स्त्री का विषय, भोग आदि सब जहर का प्याला है। वह कहीं स्त्री को नहीं भोगता, उस पर लक्ष्य करके राग के जहर को भोगता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह बात तो सुनी भी नहीं होगी। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं करता। पुरुष के शरीर का अवयव स्त्री के शरीर के अंग को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! एक ही बात परमात्मा की कि सब ओर से दृष्टि हटा ले, रुचि हटा ले, एक निर्मलानन्द का कारण आत्मा। कैसे आत्मा? निर्मल सुख का उपदेश क्यों दिया?—कि आत्मा नित्य आनन्दवाला है। आत्मा नित्य आनन्दवाला है। आहाहा! है? **(परमात्मा) नित्य आनन्दवाला है,...** आहाहा! एक कलश में तो गजब करते हैं न! इसमें बहुत शास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती कि इतने शास्त्र पढ़े और इतने पढ़े तो ऐसा हो। आहाहा! यह पढ़े तो आत्मा हो। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा नित्यानन्दवाला है। इस कारण से परम गुरु ने निर्मल सुख का उपदेश दिया। क्योंकि आत्मा नित्य आनन्दवाला है। आहाहा! कैसे जँचे? कभी देखा नहीं, कभी सुना नहीं, कभी स्पर्श नहीं किया, कभी उसकी ओर दरकार नहीं

की। यह जगत की जंजाल। बालपन खेल में गया। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया' वृद्धपना आवे, फिर कहे हाय.. हाय.. हाय.. हमने कुछ किया नहीं। परन्तु तूने क्या किया? वह मुसलमान यह बोलता था। वह रोजा होते हैं न, रोजा? वहाँ हमारे पालेज में दुकान के बाहर सोते हों न? वे रात्रि में निकले। तब वहाँ सुनते थे। 'बालपन खेल में खोया...' बालपन में खेल में बालक को कुछ खबर नहीं पड़ती कि यह क्या? ऐसे से ऐसे और ऐसे। 'जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया' वृद्धपना, शरीर जीर्ण हुआ तब हाय... हाय... अब हम कुछ कर नहीं सकेंगे। चलने में भी ठिकाना नहीं रहता। अपने क्या काम करेंगे? बापू! पर से कुछ नहीं होता। आहाहा! वह वृद्ध हो या जवान हो या बालक हो।

यहाँ तो नित्यानन्दस्वरूप भगवान है। आहाहा! **नित्य आनन्दवाला है, निरुपम गुणों से अलंकृत है...** आहाहा! भगवान आत्मा, जो गुरु ने निर्मल सुख का उपदेश दिया, वह निर्मल सुख है कहाँ? ऐसा कहते हैं। उपदेश दिया परन्तु वह है कहाँ? आहाहा! वह नित्य आनन्दवाला भगवान आत्मा परमात्मा है। आहाहा! सब आत्मा नित्य आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर हैं। **नित्य आनन्दवाला है, निरुपम...** है। **निरुपम गुणों से अलंकृत है...** जिसकी कोई उपमा नहीं, ऐसे गुणों से अलंकृत—शोभित आत्मा है। आहाहा! जिसके गुण की कोई उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसे गुणों से अलंकृत है। उसका उपदेश गुरु ने दिया कि जो निर्मल सुख का कारण है। आहाहा!

अलंकृत है, दिव्य ज्ञानवाला है... है? यह ज्ञान नहीं। शास्त्रज्ञान और धारणा भूल जाए। वह तो नित्य ज्ञानवाला है, उसका ज्ञान है। आहाहा! **दिव्य ज्ञानवाला है...** वह ज्ञान कभी विस्मृत नहीं होता, कम नहीं होता। आहाहा! अन्तिम कलश है न? आवश्यक—अवश्य करनेयोग्य हो तो यह एक है। बाकी सब व्यवहार की बातें हैं। व्यवहार आवे। आता है, होता है, परन्तु है राग, है दुःख का कारण। आहाहा!

परमात्मा **दिव्य ज्ञानवाला है उसमें—शीघ्र प्रवेश कर।** आहाहा! तो क्रमबद्ध कहाँ गया? उसमें शीघ्र प्रवेश कर, ऐसा कहा न? भगवान आनन्दस्वरूप है, उसमें शीघ्र प्रवेश कर। तो समय-समय में क्रमबद्ध होता है न? परन्तु उसमें यह आया। क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं, तब अन्दर में जाता है, तब निर्णय होता है। आहाहा! कठिन बात है, बापू! यह

तो वीतराग परमेश्वर के पेट की बात है। अभी तो इतनी अधिक गड़बड़ चलती है। खबर है न! शरीर को यहाँ ९१ वर्ष हुए। सवा पैंतालीस वर्ष तो यहाँ हुए। इस जंगल में सवा पैंतालीस वर्ष हुए। पैंतालीस वर्ष में यहाँ आये हैं, सवा पैंतालीस यहाँ हुए। बहुत देखा और बहुत सब... यह एक ही लगायी है। कुछ का कुछ और कुछ का कुछ।

एक ही सिद्धान्त—निर्मल सुख का कारण नित्यानन्द प्रभु.. आहाहा! उस ओर ढलकर आत्मा का अनुभव कर, यह सब बारह अंग का सार है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! कभी सुना न हो, अब करना कहाँ? बाहर में यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! वस्त्र सब अच्छे बनाये सफेद, पीले। दिखायी ऐसा दे मानो साधु पूजा करने जाए। पूजा करने जाए, तब पीले वस्त्र (पहने)। क्या उसमें? आहाहा!

एक तेरी चीज़ नित्यानन्द प्रभु और गुरु का उपदेश, वह निर्मल सुख प्राप्त करने का है। उसमें सब आ गया। आहाहा! उसमें प्रवेश कर। तेरा प्रवेश राग में है। पर में लक्ष्य है, प्रवेश का अर्थ पर में लक्ष्य है, उसे छोड़ दे। सुखी होना हो तो अन्दर भगवान आत्मा विराजता है... आहाहा! उस ओर लक्ष्य करके प्रवेश कर। उस आनन्द में प्रवेश कर। राग में प्रवेश करेगा तो दुःख होगा। आहाहा! बहुत सरस श्लोक है। घीयाजी! बहुत सरस श्लोक आया। यह श्लोक। आहाहा! पौन घण्टा हुआ। एक छोटा श्लोक, चार लाईन है। प्रभु का मार्ग, बापू! आहाहा! मुनियों की भाषा, मुनियों का हृदय... केवली के हृदय की तो बात ही क्या करना? परन्तु मुनियों का हृदय अलौकिक है। दिगम्बर सन्त... आहाहा! उनका चाहे जो (कथन में) हेतु एक ही (है कि) निर्मल आनन्द का नाथ नित्यानन्द है तो मिलेगा। ऐसा कहते हैं। पहले कहा था न?

निर्मल सुख के हेतु परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके... क्यों?—कि आत्मा नित्य आनन्दमय है। आत्मा तो नित्य आनन्दमय है, तो तुझे आनन्द मिलेगा। वह कोई क्षणिक चीज़ नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर नित्य आनन्दमय है, तीन काल-तीन लोक में आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। तू भगवान को भूलकर भ्रमणा में भरमा गया है। आहाहा! कुछ पैसा देखे, शरीर को देखकर, स्त्री को देखकर, मकान को देखकर, इज्जत को देखकर भगवान भरमा गया है। आहा! तेरी चीज़ अन्दर पड़ी है, भगवान!

उसकी रुचि और दृष्टि तो कर। यह मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। फिर उसमें स्थिरता करना, वह चारित्र है। वह भी उसमें स्थिरता करना, जिसमें नित्य आनन्द भरा है, उसमें दृष्टि करके उसमें लीनता करना... आहाहा! वह तेरे सुख का कारण है।

शीघ्र प्रवेश कर। आहाहा! है? शीघ्र कहाँ आया? ...शीघ्र कहाँ आया? '**चेतः शीघ्रं**' शीघ्र में कहना क्या है?—कि इस ओर लक्ष्य है, उसे इस ओर कर। होगा तो जिस समय में जो होना होगा, उस समय में होगा परन्तु ऐसा निर्णय करने में, जिस समय में जो पर्याय होगी, उसका निर्णय करने में तेरी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। आहाहा! जहाँ नित्यानन्द प्रभु पड़ा है। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली होगी, वह होगी, क्रमबद्ध होगी, फेरफार नहीं होगा, ऐसा निर्णय करने जाने पर नित्यानन्द पर तेरी दृष्टि जाएगी, तब उसका निर्णय सच्चा होगा। आहाहा! यह तो बाहर का सब उड़ा देते हैं। यह लड़के हुए 'पंकज', तीन लड़के, और सब काम करते हैं अब। ऐसे एक थे, वे करते हैं अब; इसलिए अपने अब छोड़ो। आहाहा! लड़के अच्छे, और धर्म का बहुत प्रेम। पंकज बीच का, उसे प्रेम है। आहाहा! उसके कारण इसे क्या? आत्मा को क्या? आहाहा! यह अधिकार पूरा हुआ।

— १२ —
शुद्धोपयोग अधिकार

गाथा-१५९

अथ सकलकर्मप्रलयहेतुभूतशुद्धोपयोगाधिकार उच्यते ह्न

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवल-णाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं।।१५९।।

जानाति पश्यति सर्वं व्यवहारनयेन केवली भगवान्।
केवल-ज्ञानी जानाति पश्यति नियमेन आत्मानम्।।१५९।।

अत्र ज्ञानिनः स्वपरस्वरूपप्रकाशकत्वं कथञ्चिदुक्तम्। आत्मगुणघातकघातिकर्मप्रध्वन्सनेनासादितसकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शनाभ्यां व्यवहारनयेन जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसचराचरद्रव्यगुणपर्यायान् एकस्मिन् समये जानाति पश्यति च स भगवान् परमेश्वरः परमभट्टारकः, पराश्रितो व्यवहारः इति वचनात्। शुद्धनिश्चयतः परमेश्वरस्य महादेवाधिदेवस्य सर्वज्ञवीतरागस्य परद्रव्यग्राहकत्वदर्शकत्वज्ञायकत्वादिविविधविकल्पवाहिनीसमुद्भूतमूलध्यानाषादः स भगवान त्रिकालनिरुपाधिनिरवधिनित्यशुद्धसहजज्ञानसहजदर्शनाभ्यां निजकारणपरमात्मानं स्वयं कार्यपरमात्मापि जानाति पश्यति च।

किं कृत्वा ? ज्ञानस्य धर्मोऽयं तावत् स्वपरप्रकाशकत्वं प्रदीपवत्। घटादिप्रमितेः प्रकाशो दीपस्तावद्भिन्नोऽपि स्वयं प्रकाशस्वरूपत्वात् स्वं परं च प्रकाशयति; आत्मापि व्यवहारेण जगत्त्रयं कालत्रयं च परं ज्योतिःस्वरूपत्वात् स्वयं प्रकाशात्मकमात्मानं च प्रकाशयति।

उक्तञ्चं षण्णवतिपाखण्डिविजयोपार्जितविशालकीर्तिभिर्महासेनपण्डितदेवैः ह्न

(अनुष्टुप्)

यथावद्वस्तु-निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीप-वत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मक कथञ्चित् प्रमितेः पृथक्।।

अथ निश्चयपक्षेऽपि स्वपरप्रकाशकत्वमस्त्येवेति सततनिरुपरागनिरञ्जनस्वभावनिरतत्वात्,

स्वाश्रितो निश्चयः इति वचनात्। सहजज्ञानं तावत् आत्मनः सकाशात् सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनेन भिन्नाभिधानलक्षणलक्षितमपि भिन्नं भवति न वस्तुवृत्त्या चेति, अतःकारणात् एतदात्मगत-दर्शनसुखचारित्रादिकं जानाति स्वात्मानं कारणपरमात्मस्वरूपमपि जानातीति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(मंदाक्रांता)

बन्धच्छेदात्कलय-दतुलं मोक्ष-मक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकार-स्वरस-भरतोऽत्यन्त-गम्भीर-धीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलित-मचले स्वस्य लीनं महिम्नि।।

अब, समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है।

व्यवहार से प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चय नयात्मक द्वार से निज आत्म को प्रभु पेखते॥१५९॥

अन्वयार्थ : [व्यवहारनयेन] व्यवहारनय से [केवली भगवान्] केवली भगवान [सर्वं] सब [जानाति पश्यति] जानते हैं और देखते हैं; [नियमेन] निश्चय से [केवलज्ञानी] केवलज्ञानी [आत्मानम्] आत्मा को (स्वयं को) [जानाति पश्यति] जानता है और देखता है।

टीका : यहाँ, ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है।

'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित हैं)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा प्राप्त सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन द्वारा त्रिलोकवर्ती तथा त्रिकालवर्ती सचराचर द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जानते हैं और देखते हैं। शुद्धनिश्चय से परमेश्वर महादेवाधिदेव सर्वज्ञवीतराग को, परद्रव्य के ग्राहकत्व, दर्शकत्व, ज्ञायकत्व आदि के विविध विकल्पों की सेना की उत्पत्ति मूलध्यान में अभावरूप होने से (?), वे भगवान त्रिकाल-निरुपाधि, निरवधि (अमर्यादित), नित्यशुद्ध ऐसे सहजज्ञान और सहजदर्शन द्वारा निज कारणपरमात्मा को, स्वयं कार्यपरमात्मा होने पर भी, जानते हैं और देखते हैं। किसप्रकार ? इस ज्ञान का धर्म तो, दीपक की भाँति, स्व-परप्रकाशकपना है। घटादि की प्रमिति से प्रकाश-दीपक

(कथंचित्) भिन्न होने पर भी स्वयं प्रकाशस्वरूप होने से स्व और पर को प्रकाशित करता है; आत्मा भी ज्योतिस्वरूप होने से व्यवहार से त्रिलोक और त्रिकालरूप पर को तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मा को (स्वयं को) प्रकाशित करता है।

६९ पाखण्डियों पर विजय प्राप्त करने से जिन्होंने विशाल कीर्ति प्राप्त की है, ऐसे महासेनपण्डितदेव ने भी (श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

'[श्लोकार्थः] वस्तु का यथार्थ निर्णय, सो सम्यग्ज्ञान है। वह सम्यग्ज्ञान, दीपक की भाँति, स्व के और (पर) पदार्थों के निर्णयात्मक है तथा प्रमिति से (ज्ञप्ति से) कथंचित् भिन्न है।'

अब 'स्वाश्रितो निश्चयः (निश्चय स्वाश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, (ज्ञान को) सतत *निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। (वह इस प्रकार :) सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा से भिन्न नाम तथा भिन्न लक्षण से (तथा भिन्न प्रयोजन से) जाना जाता है, तथापि वस्तुवृत्ति से (अखण्ड वस्तु की अपेक्षा से) भिन्न नहीं है; इस कारण से यह (सहजज्ञान) आत्मगत (आत्मा में स्थित) दर्शन, सुख, चारित्र आदि को जानता है और स्वात्मा को—कारणपरमात्मा के स्वरूप को—भी जानता है।

(सहजज्ञान स्वात्मा को तो स्वाश्रित निश्चयनय से जानता ही है और इस प्रकार स्वात्मा को जानने पर उसके समस्त गुण भी ज्ञात हो ही जाते हैं। अब सहजज्ञान ने जो यह जाना, उसमें भेद-अपेक्षा से देखें तो सहजज्ञान के लिए ज्ञान ही स्व है और उसके अतिरिक्त अन्य सब—दर्शन, सुख आदि—पर है; इसलिए इस अपेक्षा से ऐसा सिद्ध हुआ कि निश्चयपक्ष से भी ज्ञान स्व को तथा पर को जानता है।)

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १९२वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

''[श्लोकार्थः] कर्मबन्ध के छेदन से अतुल अक्षय (अविनाशी) मोक्ष का अनुभव करता हुआ, नित्य उद्योतवाली (जिसका प्रकाश नित्य है ऐसी) सहज अवस्था जिसकी विकसित हो गयी है ऐसा, एकान्त शुद्ध (कर्म का मैल न रहने से

---

* निरुपराग = उपरागरहित; निर्विकार।

जो अत्यन्त शुद्ध हुआ है ऐसा), तथा एकाकार (एक ज्ञानमात्र आकार से परिणमित) निजरस की अतिशयता से जो अत्यन्त गम्भीर और धीर है, ऐसा यह पूर्ण ज्ञान जगमगा उठा (सर्वथा शुद्ध आत्मद्रव्य जाज्वल्यमान प्रगट हुआ), अपनी अचल महिमा में लीन हुआ।''

गाथा - १५९ पर प्रवचन

अब दूसरा अधिकार—शुद्धोपयोग अधिकार, १२वाँ। आहाहा!

अब, समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! यह धर्म बताया। अब धर्म का फल क्या आया? **समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है।** आहाहा! शुद्धोपयोग होता है, वह कर्म के नाश करने का कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वह अशुभराग है, वह अशुद्धोपयोग है। दया, दान, व्रत, पूजा भक्ति भी अशुद्धोपयोग है। शुभ-अशुभ, दोनों अशुद्धोपयोग है, दोनों बन्ध का कारण है। उससे रहित अन्दर भगवान का उपयोग - शुद्धोपयोग अधिकार, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

ऐसा सुनने को मिले नहीं न, पोपटभाई! पोपटभाई का साला तो अरबपति है। वह तो गुजर गया। लड़के अरबपति हैं। आहाहा! परन्तु धर्म की बात नहीं। आते है, बात करते हैं। जय भगवान। आहाहा! लड़का वहाँ मुम्बई आया था। अरब रुपये। कितने? दो अरब से ऊपर। आहाहा! चालीस करोड़—दो अबर चालीस करोड़ रुपये। इनके साला के पास। इनका साला तो गुजर गया है। साला के लड़के हैं। गोवा... गोवा... गोवा में। अपने दशाश्रीमाली बनिया है। दो अरब चालीस करोड़—धूल-धूल। आहाहा! परन्तु इस आत्मा में अलंकृत अनन्त गुण भरे हैं, इतने तो वे पैसे हैं नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **समस्त कर्म के प्रलय...** अर्थात् नाश। उसके **हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है।** आहाहा!

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवल-णाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं।।१५९।।

व्यवहार से प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चय नयात्मक द्वार से निज आत्म को प्रभु पेखते॥१५९॥

ओहोहो! **टीका : यहाँ, ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है।** कथंचित् स्व-पर प्रकाशक कहा है। सर्वथा परप्रकाशक है ही नहीं। आहाहा! सर्वथा तो नित्य प्रकाशक है। अरे रे! यह बात कहाँ? पर का कर्ता तो नहीं, पर को स्पर्शता नहीं, पर्याय क्रमबद्ध बदलती नहीं। आहाहा! यहाँ पर को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! यह अन्तिम ले गये। पर का स्पर्श तो है नहीं, पर की क्रमबद्ध में तेरा अधिकार है नहीं। आहाहा! परन्तु पर को जानना, वह भी व्यवहारनय से है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तू तुझमें जा। तू तुझे देख। वह निश्चय वस्तु है। पर को देखना कहना, (वह भी व्यवहार है), क्योंकि पर में तन्मय नहीं होता। पर को जानने में पर में तन्मय नहीं होता, तो तन्मय हुए बिना जानना क्या? वह तो व्यवहार है। पर सम्बन्धी का ज्ञान अपना है। अपने में अपना ज्ञान है, उसमें तन्मय है तो उसमें अपने को ही जानता है। पर को जानना कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! कहाँ ले गये!

दया, दान और व्यवहाररत्नत्रय से धर्म नहीं होता, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उसे जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! इसमें निवृत्ति कहाँ मिले? व्यापार और धन्धे के कारण पूरे दिन होली सुलगती है। यह लाये और यह लिया और यह छोड़ा और यह छोड़ा। आहाहा! होली सुलगती होगी। कषाय की अग्नि। कहो, रामजीभाई! इन्हें खेती का धन्धा है। करोड़पति है। खेती का धन्धा। खेती-खेती। आहाहा! धूल का धन्धा है। आहाहा!

आतमराम पर को जानना, ऐसा कहना, वह आतमराम को व्यवहार है। अर र! पर का करना और परसम्बन्धी, पर संग से अपने में रागादि होना, वह तो अधर्म है। आहाहा! भगवान की भक्ति, भगवान का स्मरण, वह सब राग अधर्म है। आहाहा! शुभराग कहो या अधर्म कहो। इससे आगे जाकर भगवान पर को जानते हैं, यह भी व्यवहार है। आहाहा! यह नियमसार! नियम-नियम। निश्चय नियम। जगत का निश्चय व्यवस्था का नियम क्या है? उसका इसमें कथन है। आहाहा! नियम अन्दर पाठ में आ गया। आहाहा!

ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है। 'पराश्रितो व्यवहारः' देखो! जितना पर को जानना—ऐसा कहना, वह पराश्रित व्यवहार है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ को जानना, यह कहना व्यवहार है। '**पराश्रितो व्यवहारः**' आहाहा! अब इतनी अधिक उपाधि में से निकलना, उसमें जवान शरीर को, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ पैसे (रुपये) प्राप्त करे। आहाहा! कुछ अन्यत्र बाहर नजर पड़े नहीं। अन्दर भगवान विराजता है, उसके सन्मुख देखने का तो समय भी नहीं मिलता। तीन लोक का नाथ नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु, कहते हैं कि उसे पर को जानना—ऐसा कहना, वह पराश्रित है। आहाहा! कहाँ ले गये?

'पराश्रितो व्यवहारः' (व्यवहार पराश्रित हैं) ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से,... ऐसा भगवान का—शास्त्र का वचन होने से **व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा...** क्या कहा? आत्मगुणों का घात करनेवाले निमित्त। कर्म निमित्त है। **घातिकर्मों के नाश द्वारा...** जो अपने गुण के नाश में निमित्त है, उसे नाश करनेवाले, **प्राप्त सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन...** आहाहा! इस **द्वारा त्रिलोकवर्ती तथा त्रिकालवर्ती...** त्रिलोकवर्ती-तीन लोक में वर्तनेवाले, तीन लोक में रहनेवाले और त्रिकाल रहनेवाले। आहाहा! **सचराचर द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** सचराचर—कोई गति करनेवाले तो कोई स्थिर—ऐसे सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय को **एक समय में जानते हैं...** एक समय में परमात्मा जानते हैं। आहाहा! यह द्रव्य की श्रद्धा कराते हैं। द्रव्य एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता-देखता है, यह भी व्यवहार है। आहाहा! अपने को तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला अपना आत्मा है। आहाहा! वह **जानते हैं और देखते हैं। शुद्धनिश्चय से परमेश्वर...** शुद्ध सत्य दृष्टि से। व्यवहारनय तो असत्य से कथन हुआ। व्यवहारनय असद्भूत कथन हुआ। आहाहा! शुद्धनिश्चयनय अर्थात् शुद्ध यथार्थ (दृष्टि से) परमेश्वर महादेवाधिदेव सर्वज्ञ वीतरागदेव को **परद्रव्य के ग्राहकत्व,...** परद्रव्य को जाननेवाले और देखनेवाले **दर्शकत्व, ज्ञायकत्व आदि के विविध विकल्पों की सेना की उत्पत्ति मूलध्यान में अभावरूप होने से...** आहाहा! पर को जानने-देखने में भी विकल्प रहता है पर के ऊपर लक्ष्य जाए तो। आहाहा! पर को जानना-देखना भी अपना स्वभाव नहीं। अपना स्वभाव तो अपने को जानना-देखना है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)